भारत में न्यायिक व्यवस्था एवं मानवाधिकार की अवधारणा

चन्दन कुमार
अणुडाक– chandankumar621988@gmail.com

संपूर्ण आलेखः(Full Paper) – आज मानव अधिकारों का मुद्दा वैष्विक सरोकार का विषय है, सार्वभौमिकता की विषेषता जहाँ मानव अधिकरों के महत्व को रेखांकित करती है, वहीं यही विषेषता मानव अधिकारों की अवधारणा को विवादास्पद भी बना देती है, आधुनिक प्रजातांत्रिक समाजों में व्यक्ति के कतिपय मूलभूत अधिकारों को सर्वमान्य घोषित कर दिया है, परन्तु व्यवहार में इनका अनुपालन किसी समाज विषेष की आर्थिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है तथा यह भी सत्य है कि मानव अधिकारों की वर्तमान धारणा पष्चिमी देषों के राजनीतिक व सामाजिक तथा आर्थिक मापदण्डों पर आधारित है, विवाद की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब पष्चिमी मापदण्डों पर आधारित इस अवधारणा पर अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा सार्वभौमिक रूप से लागू करने का प्रयास किया जाता है, यद्यपि किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्वतंत्र राष्ट्रों पर बाध्यकारी सम्प्रभु शक्ति प्राप्त नहीं है, फिर भी मानव अधिकारों के अनुपालन की शर्त पचिमी देषों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार का अंग बन गई है, अतः कोई भी राष्ट्र अब मानव अधिकारों के सरोकार से अछूता नहीं है, वैष्वीकरण व उदारीकरण के वर्तमान युग में मानव अधिकारों का मुद्दा भी राजनीतिक व्यवस्थाओं तथा अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का महत्वपूर्ण लक्ष्य बन गया है इस परिप्रेक्ष्य में मानव अधिकारों की अवधारणा का विष्लेषण आवष्यक प्रतीत होता है।

वास्तव में मानव अधिकारों की अवधारणा व्यक्ति के प्रजातांत्रिक अधिकारों की धारणा से घनिष्ठ रूप से संबंधित है, अधिकारों व प्रजातंत्र का वर्तमान स्वरूप एक लम्बे विकास का दीर्घ मानवीय संघर्ष का परिणाम हे, यह भी उल्लेखनीय है कि अधिकारों की धारणा व्यक्तियों के आपसी संबंधों तथा संबंधों तथा व्यक्ति व राजनीतिक सत्ता राज्य के आपसी सम्बन्धों को परिभाषित करती है, प्राचीन भारतीय विचारकों ने धर्म के आधार पर व्यक्ति–व्यक्ति तथा व्यक्ति राज्य सम्बन्धों का विष्लेषण किया है, यहाँ धर्म का अर्थ पूजा–पाठ की किसी विषेष पद्धति से नही वरन कर्तव्य व नैतिकता से है, महाभारत मनुस्मृति, कौटिल्य के अर्थषास्त्र में शासक व शासितों को धर्म कर्तव्य से इस प्रकार बांधने की कोषिष की गई है कि व्यक्ति के अधिकारों की पूर्ति स्वतः हो जाएगी, प्राचीन भारतीय विचारकों ने आज की पष्चिमी विचारधारा की भांति अधिकार की व्याख्या राजय के विरूद्ध एक दावे के रूप में स्वीकार नहीं की, इसके विपरीत उन्होंने इस धारणा को स्वीकार किया है कि यदि समाज का प्रत्येक अंग अपने कर्तव्य का निर्वहन करता है, तो प्रत्येक के अधिकारों की पूर्ति स्वतः हो जाएगी, क्योंकि अधिकार व कर्तव्य एक ही सिक्के के दो पहलू है।

प्राचीन यूनानी विचारकों ने भी राज्य व व्यक्ति के मध्य सम्बन्धों का निरूपण अधिकारों के आधार पर नही वरन कर्तव्य व नैतिकता के आधार पर किया है इन विचारकों ने राज्य व समाज में कोई अंतर नहीं माना है, उनके लिए राज्य एक प्राकृतिक व नैतिक संस्था है तथा स्वयं में उद्देष्य है तथा व्यक्ति साधन मात्र है, चूंकि व्यक्ति राज्य के माध्यम से पूर्णता प्राप्त करता है, अतः व्यक्ति व राज्य के मध्य विरोधाभास का प्रष्न ही नहीं उठता, दोनों एक–दूसरे के पूरक है, परिणामतः दावों के रूप में राज्य के विरूद्ध व्यक्ति के अधिकारों की न तो गुंजाइस है और न ही आवष्यकता है, प्लेटो का आदर्ष राज्य न्याय की धारणा पर आधारित है, लेकिन प्लेटो न्याय का व्यापक अर्थ लेता है, न्याय का तात्पर्य है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने गुण का स्वभाव` अनुसार अपने कर्तव्यों का पालन करे तथा दूसरों के कार्यो में हस्तक्षेप न करे प्लेटो की न्याय की धारणा नागरिकों के कर्तव्यों पर बल देती है तथा यह व्यक्ति व राज्य (समाज) दोनों के विकास के लिए आवष्यक है, अरस्तू ने राज्य को एक प्राकृतिक व नैतिक संस्था माना है, व्यक्ति राज्य की गतिविधियों में भाग लिए बिना अपना नैतिक विकास नहीं कर सकता, अतः राजनीतिक भागीदारी व्यक्ति के नैतिक विकास की पूर्व शर्त है यह उसका अधिकार नहीं है वरन उसका दायित्व है कि अपने नैतिक विकास हेतु राज्य की गतिविधियों में भागीदारी सुनिष्चित करे राज्य साध्य है तथा व्यक्ति साधन है निष्कर्षतः प्रमुख यूनानी विचारकों ने राज्य व व्यक्ति को एक–दूसरे का पूरक मानते हुए भी व्यक्ति के कर्तव्यों पर बल दिया है।

मध्ययुगीन यूरोप का इतिहास चर्च व सामन्तवादी राज्यों के मध्य प्रभुत्व हेतु संघर्ष का युग है, इस युग में यह मान्यता प्रबल थी कि व्यक्ति अपने धार्मिक जीवन में चर्च के अधीन है तथा राजनीतिक जीवन में राज्य के अधीन है, सेण्ट आगस्टाइन जैसे चिन्तकों ने राज्य के उपर चर्च की प्रभुता का समर्थन भी किया है, पोप गेलासियस ने दोनों की व्यक्ति के धार्मिक व राजनीतिक जीवन में अलग–अलग सता स्वीकार की है इसे दो तलवारों का सिद्धान्त भी कहा जाता है, चर्च व राज्य के मध्य प्रभुता के संघर्ष में व्यक्ति के अधिकारों का कोई महत्व नहीं था, व्यक्ति राज्य अथवा चर्च दोनों में से किसी के विरूद्ध अपने अधिकारों का दावा नहीं कर सकता था।

प्रत्येक प्रकार के अधिकारों विषेषकर मानव अधिकारों की आधारषिला इस धारणा पर आधारित है कि मानव गरिमायुक्त तथा विवेकषील प्राणी है तथा समाज की राज्य सहित सभी संस्थाओं का मूल उद्देष्य व्यक्ति का हित अथवा मानव कल्याण है वस्तुतः दावों के रूप में अधिकारों की धारणा की दार्षनिक आधारषिला सर्वप्रथम पुनर्जागरण की क्रान्ति द्वारा रखी गई थी 15वीं शताब्दी में यूरोप ने पुनर्जागरण के इस विचार को अपना केन्द्र बिन्दु बनाया कि व्यक्ति एक गरिमायुक्त व विवेकषील प्राणी है तथा राज्य एक मानव निर्मित संस्था है, पुनर्जागरण के इस मूल मंत्र की अभिव्यक्ति साहित्य कला, संस्कृति आदि सभी क्षेत्रों में हुई पुनर्जागरण ने जहाँ एक ओर व्यक्ति के उपर सामन्तवादी व चर्च के नियंत्रण व शोषण का अन्त किया, वही मानव केन्द्रित राजनीतिक व्यवस्थाओं के विकसित होने का मार्ग प्रषस्त किया, वास्तव में प्रजातंत्र का दार्षनिक आधार पुनर्जागरण में ही निहित है।

आधुनिक युग के आरम्भ में ही यूरोप के राजनीतिक विचारकों ने एक तरफ जहाँ दैवीय राजय की धारणा को नकार दिया, वहीं दूसरी ओर मानवनिर्मित तथा जनसहमति पर आधारित प्रजातांत्रिक राज्यों के विकास

का मार्ग प्रषस्त किया तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं ने भी इसी दिषा में अपना योगदान दिया, यद्यपि 1215 के मैग्नाकार्टा महान अधिकार पत्र द्वारा जनता ने राजासेयह अधिकार प्राप्त कर लिया था कि राजा द्वारा नए कर लगानेसे पूर्व समाज के विभिन्न वर्गो से सहमति प्रापत करना आवष्यक है, लेकिन राजा की निरंकुषला पर प्रतिबंध तथा जनप्रतिनिधियों के द्वारासता के स्थानान्तरण का कार्य 1688 की इंग्लैण्ड की गौरवपूर्ण क्रांति द्वारा कियागया, इस क्रांति ने इंग्लैण्ड में जनता के अधिकारों पर आधारित प्रजातांत्रिक शासन के विकास का रास्ता सृदढ़ किया।

समझौतावादी राजनीतिक विचारकों हॉब्स, ब्लॉक व रूसों ने राज्य को व्यक्तियों के आपसी समझौते का परिणाम बताया तथा व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों कोमान्य प्रदान की प्राकृतिक अधिकार वे अधिकार है, जो वयक्ति को राज्य के पूर्व प्राकृतिक अवस्था में जन्म से प्राप्त है, प्राकृतिक अधिकारों की धारणा व्यक्ति के समस्त अधिकारों सहित मानव अधिकारों कामूल श्रोत है, ब्रिटिष विचारक जॉन लॉक ने इंग्लैंड की गौरवपूर्ण क्रान्ति की उपलब्धियों का समर्थन किया तथा उदारवादी विचारधारा पर आधारित सीमित प्रजातांत्रिक शासन का सूत्रपात किया लॉक का सबसे महत्वपूर्ण विचार प्राकृतिक अधिकारों का सिद्धांत है उसने जीवन, स्वतंत्रता तााि सम्पति के तीन अधिकारों को प्राकृतिक अधिकारों की श्रेणी में रखा, जो व्यक्ति को राज्य की उत्पति से पूर्व जन्म से ही प्राप्त है, बल्कि राज्य का निर्माण इन प्राकृतिक अधिकारों की सुरक्षा हेतु ही किया जाता है, यदि राजनीतिक समाज इन अध्किारों की रक्षा करने में असफल होता है या वह स्वयं इन अधिकारों का उल्लंघन करता है, तो व्यक्तियों को यह अधिकार है कि वे क्रांति द्वारा सरकार को बदल दें, प्राकृतिक अधिकारों की उक्त धारणा ने समस्त आधुनिक जनक्रांन्तियों तथा मानव अधिकारों की वर्तमान अवधारणा को प्रेरित किया है।

अधिकारों की धारणा को दृढ़ता प्रदान करने तथा व्यक्तियों के कतिपय अधिकारों को जन्मजात अधिकारों के रूप में सर्वमान्य बनाने में अमरीका व फ्रांस की क्रान्तियों का महत्वपूर्ण योगदान है, अमरीकी क्रांति 1776 की घोषणा में कहा गया, हम इस सत्य को स्वयंसिद्ध मानते है कि मनुष्यों को समान बनाया गया है, अर्थात समानता का अधिकार एक स्वयंसिद्ध अधिकार है, इसी प्रकार फ्रांसीसी क्रांति 1789 ने स्वतंत्रता समानता तथ बन्धुत्व के तीन नारों का उदघोष किया, जो वर्तमान मानवीय अधिकारों के आधार बन गए है, क्रांसीसी क्रांति के उपरांत जारी अधिकारों के घोषणा पत्र में कहा गया कि व्यक्ति अपने अधिकारों के संबंध में स्वतंत्र व समान पैदा हुए है अर्थात स्वतंत्रता व समानता के अधिकारों को व्यक्ति के जन्मजात अधिकार माना गया अधिकारों की इस उदीयमान धारणा ने उदारवादी प्रजातंत्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है लेकिन उदारवादी अधिकारों की उक्त धारणा केवल राजनीतिक व नागरिक अधिकारों तक सीमित थी, उसमें सामाजिक व आर्थिक अधिकारों को महत्व नहीं दिया गया था।

सामाजिक व आर्थिक अधिकारों के विकास की दृष्टि से मार्क्सवादी व समाजवादी विचारकों की भूमिका महत्वपूर्ण है, कार्ल मार्क्स ने उदारवादी पूँजीवाद में निहित शोषण का खुलासा किया तथा सामाजिक व आर्थिक समानता से रहित उदारवादी प्रजातंत्र को एक धोखा बताया उदारवादी प्रजातंत्र को मार्क्सवादी आलोचनाओं से बचाने के लिए 20वीं शताब्दी में उदारवादी विचारधारा में प्रजातांत्रिक समाजवाद तथा कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के माध्यम से सामाजिक व आर्थिक अधिकारों का समावेष किया गया, 1917 की रूस की साम्यवादी क्रांति ने सामाजिक व आर्थिक अधिकारों के महत्व को रेखांकित किया इस प्रकार द्वितीय विष्वयुद्ध के पूर्व ही व्यक्ति के नागरिक, सामाजिक व राजनीति अधिकारों को आधुनिक शासन व्यवस्थाओं का अंग मान लिया गया था।

अब यह प्रष्न विचारणीय है कि जब 20वीं शताब्दी के आरम्भ में व्यक्ति के सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक अधिकारों को मान्यता प्राप्त हो गई थी, तो संयुक्त राष्ट्र संघ को मानव अधिकारों की अलग घोषणा क्यों करनी पड़ी? वास्तव में प्रथम विष्वयुद्ध ने ही यह सिद्ध कर दिया था कि राष्ट्रीय परिदृष्य अप्रभावित नहीं रह सकता प्रथम युद्ध के पश्चात व उसके परिणामस्वरूप जर्मनी, इटली तथा जापान में प्रतिक्रिया स्वरूप निरंकुष, तानाषाही तथा प्रजातंत्र विरोधी राजनीतिक प्रवृतियों को बल मिला जिसके परिणामस्वरूप विष्व को दूसरे विष्वयुद्ध के कारणों का विष्लेषण कर विद्वानों ने इसके तमाम कारणों पर प्रकाष उाला, यह माना गया कि इस युद्ध काएक प्रमुख कारण जापान जर्मनी तथा अठली जैसे देषों में प्रजातंत्र व नागरिक अधिकारों का अभाव है जिससे शासकों ने निरंकुष नीतियों को अपनाया तााि विष्व को युद्ध की विभीषिका में झोंक दिया, यहाँ तक कि युद्ध के समय ही 1941 में अमरीका के राष्ट्रपति ने चार स्वतंत्रताओं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता उपासना की स्वतंत्रता भय से स्वतंत्रता तथा अभाव से स्वतंत्रता को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा की आवष्यक शर्त बताया, यद्यपि विभिन्न नागरिक अधिकारों की व्यवस्था राष्ट्रीय स्तर पर राज्यों के संविधान व कानूननों में की जाती है तथा देष की न्यायपालिका द्वारा उन्हें संरक्षण प्रदान किया जाता है, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अधिकारों की कोई धारणा प्रचलित नहीं थी, जो कि द्वितीय विष्वयुद्ध के उपरांत अन्तर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा के लिए आवष्यक की व्यवस्था इसी अन्तर्राष्ट्रीय आवष्यकता की पूर्ति के लिए की गई अतः अन्य अधिकारों के विपरीत मानव अधिकारों की सबसे महत्वपूर्ण विषेषता यह है कि इनके संरक्षण तथा लागू करने का दायित्व सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का हैयदि विष्व के किसी भाग में मानव अधिकारों का उल्लंघन इस प्रकृति का है कि उससे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो गा है, तो अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से वहां सैनिक हस्तक्षेप भी कर सकता है।

मानव अधिकार विष्वकोष के अनुसार, मानव अधिकार वे अधिकार है जो सभी व्यक्तियों व उनके समूहों को मानव होने के परिणामस्वरूप प्राप्त है, अर्थात मानव अधिकार जीवन की वे परिस्थितियों है जो मानव प्राणी के रूप में सभी व्यक्तियों को बिना किसी भेदभाव जैसे जाति, धर्म, जन्म स्थान लिंग आदि के प्राप्त है, मानव अधिकारों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषेषता उनकी सार्वभौमिकता है अर्थात ये अधिकार बिना किसी भेदभाव के सभी मानव प्राणियों को उपलब्ध होने चाहिए, दूसरी विषेषता यह है कि ये अधिकार वयक्ति के रूप में विकास हेतु आवष्यक परिस्थितियाँ हैं अर्थात इनके अभाव में व्यक्ति के व्यक्तित्व व क्षमताओं का विकास नहीं हो सकता, तीसरी विषेषता यह है कि ये अधिकार स्वयंसिद्ध सत्य है तथा व्यक्ति को जन्म से प्राप्त है, अतः चूँकि मानव अधिकारों को राजनीतिक व्यवस्था द्वारा प्रदान नहीं किया गया इसलिए राज्य द्वारा इन्हें छीना नहीं जा सकता है, इस विषेषता को मानव अधिकारों की अदेयता भी कहते हैं, मानव अधिकारों की चौथी विभिन्न प्रकार के मानव अधिकारों को अविभाज्य तथा अन्तः सम्बन्धित माना गया है, अर्थात मानव अधिकारों की श्रेणी में जो विभिन्न प्रकार के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व राजनीतिक अधिकार है, वे आपस में एक–दूसरे के पूरक हैं तथा उन्हें लागू करने में पारस्परिक भेदभाव या विभाजन नहीं किया जा सकता।

जैसा कि उपर बताया गया है कि द्वितीय विष्व युद्ध के उपरान्त व्यक्ति के अधिकार अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का सरोकार बन गए तथा उनका नए सिरे से संहिताकरण कर मानव अधिकारों की संज्ञा दी गई, सर्वप्रथम संयुक्त राष्ट्र चार्टर ने मौलिक मानव अधिकारों तथा व्यक्ति की गरिमा में आस्था व्यक्त की तत्पष्चात संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 10 दिसम्बर 1948 को मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को स्वीकार किया, इसीलिए प्रत्येक वर्ष 10 दिसम्बर को मानवाधिकार दिवस के रूप में मनाया जाता है इस घोषणा में सभी व्यक्तियों के कतिपय सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक अधिकारों को सम्मिलित किया गया, सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद एक में कहा गया, सभी व्यक्ति सम्मान व अधिकारों की दृष्टि से समान पैदा हुए हैं सभी व्यक्ति विवेक व चेतना से युक्त है, इसी घोषणा के अनुच्छेद दो में विष्वास व्यक्त किया गया कि सभी व्यक्ति इस घोषणा में उल्लिखित सभी स्वतंत्रताओं को बिना किसी प्रकार के भेदभाव के प्राप्त करने के अधिकारी है। इसके उपरान्त संयुक्त राष्ट्र महासभा ने मानव अधिकारों के सम्बन्ध में दो बाध्यकारी अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों को स्वीकार किया है, प्रथम 1966 में पारित नागरिक व राजनीतिक अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय संधि तथा द्वितीय आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि, इन दोनों सन्धियों को अधिकांष राष्ट्रों ने मान्यता प्रदान कर दी है, ये दोनों सन्धियाँ इस मान्यता के परिणामस्वरूप 1976 से प्रभावी हो गई, इन दो सन्धियों सहित मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा 1948 को मानव अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय संहिता के रूप में जाना जाता है, इस संहिता के अनुसार पाँच प्रकार के मानव अधिकार हैं, प्रथम, नागरिक अधिकार, जिनमें समानता का अधिकार, स्वतंत्रता तथा जीवन का अधिकार दास प्रथा की समाप्ति, न्यायपूर्ण कानूनी प्रक्रिया का अधिकार शामिल है, दूसरे, राजनीतिक अधिकार, जिनमें राजनीतिक प्रक्रिया में भाग लेने का अधिकार, राष्ट्रीयता का अधिकार, शरण पाने का अधिकार आदि सम्मिलित है, तीसरे आर्थिक अधिकार, जिनमें, सम्पति का अधिकार विपरीत परिस्थितियों में सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार, जीविका निर्वाहन हेतु पर्याप्त साधन पाने का अधिकार आदि शामिल है, चौथे, सामाजिक अधिकार, जिनमें विवाह करने व परिवार स्थापित करने का अधिकार, परिवार के संरक्षण का अधिकार, षिक्षा का अधिकार आदि सम्मिलित है पांचवें, सांस्कृतिक अधिकार जिनमें समुदाय के सांस्कृतिक जीवन में भागीदारी का अधिकार, सांस्कृतिक कृतियों के संरक्षण का अधिकार आदि सम्मिलित है।

संयुक्त राष्ट्र महासभा ने समय–समय पर विषिष्ट वर्गो के हितों की रक्षा हेतु अन्य विषिष्ट मानवाधिकारों को भी मान्यता प्रदान की है तथा मानवाधिकारों का विस्तार किया है, दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद नीति के विरूद्ध 1969 में महासभा ने सभी प्रकार के जातीय भेदभाव को समाप्त करने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय को स्वीकृति प्रदान की थी इसी प्रकार महासभा ने 1979 में महिलाओं के प्रति सभी प्रकार के भेदभाव समाप्त करने का अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय स्वीकार किया बच्चों के मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु वर्ष 1989 में महासभा ने एक अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय स्वीकार किया है, अतः वर्तमान में मानवाधिकारों के दायरे में केवल सामान्य मानवाधिकार ही सम्मिलित नहीं है, वरन विषिष्ट वर्गो के अधिकारों को भी मान्यता प्रदान कर दी गई है।

मानवाधिकारों के अस्तित्व को उचित ठहराने हेतु समय–समय पर विभिन्न सिद्धान्तों का सहारा लिया गया है इस सम्बन्ध में सबसे प्रचलित सिद्धांत प्राकृतिक अधिकारों का सिद्धांत है, प्राचीन स्ट्रोइक विचारकों ने यह प्रतिपादन किया था कि मानव व्यवहार का मूल्यांकन प्राकृतिक नियमों के आधार पर किया जाना चाहिए, इसके बाद रोमन विचारकों ने जसजेष्टियम का विस्तार दिया जिसके अनुसार राष्ट्रीय सीमाओं से बाहर व्यक्तियों के कुछ सार्वजनिक अधिकार हैं प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांत का व्यापक विष्लेषण व समर्थन समझौतावादी विचारकों हॉब्स, लॉक व रूसों द्वारा किया गया था इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्तियों को जन्म से प्राकृतिक अवस्था में (राज्य निर्माण से पूर्व की अवस्था) कतिपय अधिकार प्राप्त हैं जिन्हें प्राकृतिक अधिकार कहा जाता है चूँकि ये अधिकार व्यक्ति को जन्म से प्राप्त है, तथा राज्य द्वारा नहीं प्रदान किए गए हैं, अतः राज्य द्वारा इन्हें वापस अथवा नियंत्रित नहीं किया जा सकता मानव अधिकारों को स्वयंसिद्ध सत्य मानना तााि उनकी अदेयता व सार्वभौमिकता इसी सिद्धांत से प्रेरित है।

मानव अधिकारों का दूसरा सिद्धांत पारस्परिकता का नैतिक नियम है, इस नियम के अनुसार, हमे दूसरों के साि वैसा ही वयवहार करना चाहिए जैसा कि हम दूसरों से अपने प्रति व्यवहार करना चाहते है, इस नियम का यह सुनिष्चित करता है कि हमारे अधिकारों का संरक्षण स्वतः सुनिष्चित होगा, यह नियम मूल रूप से विष्व के प्रमुख धर्मो में पाया जाता है, विष्व धर्मो की संसद ने अपने 1993 में जारी वैष्विक नैनिकता के नियमों में इसे स्थान प्रदान किया है।

मानवाधिकारों के विषय में तीसरा सिद्धांत जॉन फिनिस द्वारा प्रतिपादित साधन सिद्धांत है, इस सिद्धांत के अनुसार मानव अधिकार वह परिस्थितियों का सान है, जिसके बिना व्यक्ति का मानव के रूप में विकास सम्भव नहीं है, इसीलिए ये अधिकार सभी व्यक्तियों को समान रूप से प्राप्त होने चाहिए, मानव अधिकारों की व्याख्या करने वाला चौथा सिद्धांत हित सिद्धांत है, जिसके अनुसार व्यक्ति दूसरों के अधिकारों का सम्मान इसलिए करते है कि इससे उनके अधिकार सुरक्षित होते है यह अधिकारों का संरक्षण उनके हित में है भारतीय विद्वान नीरज नाथवानी ने हित सिद्धांत की व्याख्या राज्य के संदर्भ में की है, उनके अनुसार व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा व पालन स्वयं राज्य के हित में है इनके अधिकारों के संरक्षण व समुचित व्यवस्था द्वारा ही राज्य अपने को हिंसात्मक विरोधो व आन्दोलनों से बचा सकता है, मानव अधिकारों के औचित्य के सम्बन्ध में पांचवां दृष्टिकोण मानवीय सुरक्षा दृष्टिकोण है, इस सिद्धान्त के अनुसार मानव अधिकार मानव सुरक्षा की पूर्ण शर्त है यह दृष्टिकोण राज्य केन्द्रित सुरक्षा के स्थान पर व्यक्ति के केन्द्रित सुरक्षा की धारणा का समर्थक है आज के पारस्परिक निर्भरता वाले युग में मानव केन्द्रित सुरक्षा का दृष्टिकोण व्यक्ति व समाज दोनों की सुरक्षा हेतु आवष्यक है, इस सिद्धांत के अनुसार मानव अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था वैष्विक स्तर पर मानव सुरक्षा हेतु आवष्यकता है।

यद्यपि मानव अधिकारों को अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय की मान्यता प्राप्त हो चुकी है तथा मानव अधिकार राष्ट्रों की प्रगति का मापदण्ड भी बनचुके हैं, यथापि कतिपय आलोचक विभिन्न आधारों पर मानव अधिकारों की आलोचना भी करते हैं, मानव अधिकारों की आलोचना की दो धाराएं है, प्रथम श्रेणी में वे आलोचक आते है जो मानव अधिकारों को राज्य व समाज के विरूद्ध दावों के रूप में मान्यता नहीं प्रदान करते, इस श्रेणी में सर्वप्रथम विभिन्न रूढ़िवादी आलोचक जैसे एडमण्ड बर्क डेडि ह्यूम तथा मैकिन्टायर आदि है, जिनके अनुसार ऐसे कोई प्राकृतिक अधिकार मान्य नहीं है, जिन्हें समाज व संस्कृति की मान्यता नहीं है तथा जो समाज व

संस्कृति द्वारा विकसित नहीं किए गए, इसी आधार पर एडमण्ड बर्क ने फ्रांसीसी समाज में स्वाभाविक ढंग से नहीं हुआ था, यदि हम मानव अधिकारों को समाज तथा संस्कृति से विकसित मान तेले है तो मानव अधिकारों की कोई सार्वभौमिक धारणा नही होगी, क्योंकि प्रत्येक देष की संस्कृति की समाज में पर्याप्त विभिन्नताएं पाई जाती है, इसी आधार पर 1990 में सिंगापुर के पूर्व प्रधानमंत्री ली कुआन यी तथा मलेषिया के नेता महथिर मोहम्मद ने तर्क दिया था कि एषिया में सामाजिक मूल्य पष्चिमी देषों से इस अर्थ में भिन्न है कि यहाँ वैयक्तिक स्वतंत्रता के स्थान पर सामाजिक स्थायित्व व सम्पन्नता को अधिक महत्व दिया गया है तथा मानव अधिकारों की वर्तमान धारणा एषियाई देषों पर बाहर से थोपी हुई प्रतीत होती है।

मानव अधिकारों की एक अन्य आलोचना कानूनी दार्षनिकों जैसे बेन्थम आदि ने की है उनके अनुसार राज्य के विरूद्धव उसकी मान्य के बिना कोई प्राकृतिक अथवा मानव अधिकार नहीं हो सकते, उन्होंने प्राकृतिक अधिकारों को Non- Sense Upon Stills कहकर उनकी निन्दा की है ऐतिहासिकतावादी विचारक जैसे सर हेनरी मेन तथा सैविग्नी ने माना है कि वही अधिकार मान्य है, जिनका ऐतिहासिक दृष्टि से किसी समाज में विकास हुआ है, अधिकार बाहर से थोपे नहीं जा सकते, 20वीं शताब्दी के तार्किक प्रत्यक्ष वादियों ने मानव अधिकारों को केवल नैतिक घोषनाएं माना है जो मान्य नहीं है, क्योंकि अनुभव के आधार पर उनका सत्यापन नहीं किया जा सकता है, यद्यपि कार्ल मार्क्स के विचारों से मनुष्य के आर्थिक व सामाजिक अधिकारों को प्रेरणा मिली है, परन्तु उसने स्वयं व्यक्ति की स्वतंत्र इच्छा को महत्व न देकर आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों को अपने विचारों में अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

मानव अधिकारों की दूसरी श्रेणी में वे आलोचक आते है जिसके अंतर्गत आलोचकों ने मानव अधिकारों की अविभाज्यता व सार्वभामिकता की विषेषताओं को स्वीकार नहीं किया है ओलिविया बाल तथा पॉल ग्रीडी जैसे आलोचकों ने मानव अधिकारों की अविभाज्यता को स्वीकार नहीं किया है उनके अनुसार राजनीतिक व नागरिक अधिकार अन्य अधिकारों जैसे सामाजिक व आर्थिक अधिकारों से इस अर्थ में भिन्न है कि सामाजिक व आर्थिक अधिकार अनिष्चित प्रकृतिक के है, इनको लागू करने हेतु धन की आवष्यकता होती है तथा इनकी प्रकृति सकारात्मक है, जबकि ये विषेषताएं नागरिक व राजनीतिक अधिकारो में नही पाई जाती है, फिलिप एल्स्टन ने भी माना है कि सभी अधिकार एक जैसे नही है उन्हें लागू करने में आपसी प्रमुखता प्रदान किया जाना आवष्यक है इसी प्रकार सांस्कृतिक सापेक्षतावाद व विषिष्टता के अधिकार पर आलोचक मानव अधिकारों की सार्वभौमिकता को स्वीकार नहीं करते है।

उक्त आलोचनाओं का व्यावहारिक पहलू है कि तीसरी दुनिया के अधिकांष देष मानव अधिकारों को यूरोप की ईसाई परम्परा से प्रेरित मानते है तथा अपनी विषिष्ट सामाकि व सांस्कृतिक परम्पराओं के आधार पर उनका थोपा जाना स्वीकार नहीं करते हैं, जबकि अधिकांष यूरोपीय देष मानव अधिकारों के अनुपालन में अपने को अग्रणी मानते हुए अन्य देषों से उन्हें इसी रूप में लागू किया जाना आवष्यक समझते हैं, यह विवाद अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में कई बार उभर कर आ चुकाहै, संक्षेप में मानव अधिकारों की अवधारणा अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा सामान्य रूप से अनुमान होते हुए भी अनुपालन के स्तर पर जटिल व विवादास्पद है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वेब दुनिया– जानिए क्या है समान नागरिक संहिता।
2. जागरण जोष, (स्पेषल), 26 दिसम्बर 2019 – समान नागरिक संहिता भारत के लिए क्यों जरूरी है।
3. वसु, दूर्गादास– भारत का संविधान, एक परिचय, लेक्सिस–नेक्सिस, नई दिल्ली।
4. उपाध्याय जय–जय राम, भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद।
5. पाण्डेय, जय नारायण– भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद।
6. प्रतियोगिता दर्पण – 2010
7. कुरूक्षेत्र– 2001
8. प्रतियोगिता दर्पण– 2011